P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-1) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

पूर्व मध्यकालीन भारत में करारोपण

शैलेन्द्र कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
एम0डी0पी0जी0 कालेज,
प्रतापगढ़, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोघ पत्र में भारतीय राजशास्त्रियों द्वारा वर्णित सप्रांग सिद्धांत के अंतर्गत अनिवार्य अंग कोष की अभिवृद्धि हेतु राज्य द्वारा प्रजा पर लगााए गए विविध करों का वर्णन करने का प्रयास किया गया हैं। विशेषत पूर्व मघ्यकाल 750 . 1200 ई. में जब सत्ता के विकेन्द्रीकरण व बाहय आक्रमणों के फलस्वरूप राज्य दुर्बल हों गए तो राज्यों को प्रजा पर अनेको गैर परम्परागत कर लगाने पडें जिससे प्रजा में असंतोष व्याप्त हुआ।

मुख्य शब्द : सप्तांग सिद्धान्त, भारतीय राजशास्त्री, करारोपण।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय राजशास्त्रियों ने सप्तांग सिद्धान्त के अन्तर्गत कोष को राज्य का अनिवार्य अंग स्वीकार किया है, क्योंकि राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता पर ही निर्भर है। राजा राजकोष की समृद्धि के लिए अपनी प्रजा से कर ग्रहण करता है। पूर्व मध्यकालीन भारत के विभिन्न राजवंशों द्वारा शासित प्रदेशों में अरोपित करों की सूचना तद्युगीन अभिलेखों एवं साहित्य से प्राप्त होती है। इस काल में जहाँ परम्परागत मान्य कर व्यवहार में थे, वही कुछ नवीन प्रकार के करों की भी सूचना मिलती है। निरन्तर होने वाले आपसी संघर्षों एवं तुर्कों के आक्रमण के कारण राजाओं को करों में वृद्धि के लिए विवश होना पड़ा था। सामंती अर्थ व्यवस्था ने भी कराधान को प्रभावित किया था। प्रस्तुत लेख में पूर्व मध्यकालीन भारत में प्रचलित करों का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन का उददेश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रकाशन का उददेश्य पूर्व मघ्यकाल राज्य द्वारा आरोपित करो तथा उससे प्रभावित प्रजा की दशा का वर्णन करना हैं। विवेच्य काल में कृषि भूमि बाजार तथा भवन व मार्ग करों के प्रमाण मिलतें हैं जो संभवत कलान्तर के प्रशासनिक व्यवस्था के लिए आधार बनें। लोकहित कारी राज्य (welfare state) अवधारणा में अनेक अनावश्यक करों से प्रजा को मुक्त कर दिया।

विषय विस्तार

विवेच्य युग में राजा कोष की अभिवृद्धि के लिए प्रजा से कर ग्रहण करता था। राजा प्रजा का पालन करता है। अतः वह उसके धार्मिक कृत्यों के फल का 1/6 भाग प्राप्त करने का अधिकारी था। गृहस्थों से ही नहीं वरन् संन्यस्त जीवन व्यतीत करने वाले संन्यासियों को भी अपनी तपो वृत्ति का 1/6 भाग राजा को प्रदान करने का उल्लेख सोमदेव सूरि ने किया है, क्योंकि संन्यासी भी राजा की छत्रछाया में रहकर अपने अध्यात्मिक कृत्यों का सम्पादन करते है।[1] पराशर का कथन है कि प्रजा राजा को 1/6 भाग देवता को 1/21, ब्राह्मण को 1/30 भाग प्रदान करें अर्थात 1/6 भाग राजा को कर के रूप में देवता का भाग धार्मिक कार्यों में तथा ब्राह्मणों को धार्मिक कृत्यों के सम्पादन हेतु प्रदान करें।[2] प्राचीन भारत में राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था। यह कर नकद एवं वस्तु दोंनों के माध्यम से लिया जाता था। राज्यशास्त्र के प्रणेताओं ने राजा को सहृदयापूर्वक करों की वसूली के लिए निर्देश दिया है। परशर मालाकार का उदाहरण प्रस्तुत करते है, जिस प्रकार मालाकार बगीचे में पुष्पों का चयन क्रमशः करता है उसी प्रकार राजा को भी प्रजा से कर ग्रहण करना चाहिए, अंगार की भांति सर्वस्व बहन की प्रवृत्ति के साथ नहीं।[3] मनुस्मृति (7. 127) पर भाष्यकार मेधातिथि का विचार है कि जिस प्रकार भ्रमर मधु का संचय पुष्प को सुरक्षित करते हुए करता है, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कर ग्रहण करें।[4] अग्निपुराण में राजस्व के आठ स्रोतों का उल्लेख है :– कृषि, व्यापार, राजधानीी, नगर अथवा दुर्ग, बॉध एवं पुल, कुंजर बन्धन, खान एवं धातु, बलीदान, बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाकर समृद्ध कोष की स्थापना की जाती है।[5] सोमदेव ने राजा को

राष्ट्रकंटकों के प्रति आगाह किया है, जो अर्थतन्त्र को प्रभावित कर सकते है। चोर, देश से निकाले हुए अपराधी या गुप्तदूत, खेतों या मकान की नाप करने वाले, धमन अर्थात व्यापारियों की वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने वाले, राजा के प्रेम पात्र, जंगल विभाग के अधिकारी, स्थानों के रक्षणार्थ नियुक्त किये गये कोट्टपाल, आक्षशालिक अर्थात जुआ खेलाकर जीविका चलाने वाले व्यक्ति, सेना के अधिकारी तथा वार्घुषिक अर्थात अन्न संग्रह कर अकाल की कामना करने वाले व्यापारीगण राष्ट्र कंटक होते है।[6] सोमदेव ने नीति वाक्यामृतम् में अर्थतन्त्र में बाधक तत्वों का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करके राजा का ध्यान आकृष्ट किया है। राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने गुप्तचरों के माध्यम से इन पर निगरानी रखें। दूसरे देशों से आयातित वस्तुओं पर कठोर कराधान का विरोध किया गया है। राजा को व्यापार की समृद्धि एवं करों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के योग्य पदाधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। सोमदेव ने विस्तृत विवेचन करते हुए उल्लेख किया है कि अधिकारी वर्ग यह जॉच करें कि व्यापारीगण अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तुओं की मिलावट तो नहीं करते है, कहीं वे दो प्रकार के बाटों एवं तुला का प्रयोग तो नहीं करते है। वणिक वर्ग स्पर्धावश मूल्य वृद्धि तो नहीं कर रहे हैं। स्पर्द्धावश बढ़ाए हुए मूल्य को राजा स्वयं ग्रहण कर लेता था। वस्तु के उचित मूल्य को ग्रहण करने का अधिकार राजा को नहीं था यदि किसी व्यापारी ने चोरी से अल्प मूल्य पर कोई वस्तु क्रय की है तो अधिकारियों द्वारा व्यापारी को अल्प मूल्य देकर वस्तु अधिगृहीत कर ली जाती थी।[7] इस प्रकार विवेच्य काल में राजा कृषि, व्यापार एवं अन्य स्रोतों से कर प्राप्त करके कोष की वृद्धि करता था।

विवेच्य युग में प्रचलित करों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य एवं अभिलेखों में है। भूमिकर परम्परानुसार ही ग्रहण किया जाता था। मनु भूमिकर को 1/8 एवं 1/4, कोटिल्य ने 1/3 एवं 1/4 भाग पर राजा का अधिकार स्वीकार किया है। विष्णुस्मृति में चालव तथा अन्य सभी प्रकार के अन्नों का 1/6, पशु स्वर्ण एवं वस्त्र का 2 प्रतिशत, मांस, मधु, घी, दवाओं, सुगन्धित द्रव्य, पुष्प–फल, विशेष प्रकार की लकड़ी, हिरण के चमड़े, मिट्टी के वर्तन एवं अन्य प्रकार के वर्तनों पर, बॉस से निर्मित वस्तुओं पर 1/6 भाग तथा ऐसी वस्तुओं पर जिन पर कोई लागत नही आती है उन पर 1/20 भाग पर राजकीय अधिकार माना है। मनु ने भूमि के निर्धारण के लिए भूमि की उर्वरता को आधार माना है तथा 1/6, 1/8 और 1/12 भाग कर के रूप में लेने का उल्लेख किया है।[8]

भूमिकर का विवेच्य काल में उद्रंग एंव उपरिकर के नाम से प्रायः सभी दान पत्रों में उल्लेख है। स्मृति ग्रन्थों में इसके लिए भाग एवं अंश शब्द का प्रयोग हुआ है।[9] कौटिल्य ने इसे 'बलि' नाम से सम्बोधित किया है।[10] डी0सी0 सरकार ने बलि को नकद कर तथा भाग को अधिया अथवा बटाई से प्राप्त कर के रूप में माना है।[11] भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में भोग कर का उल्लेख हुआ है।[12] डॉ0 सरकार का विचार है कि परवर्ती ग्रन्थों में बलि एवं भाग एक दूसरे के पर्याय वन गये।[13] भाग का तात्पर्य अधिकारियों एवं सामंतों द्वारा राजा को दिये गये उपहार से था।[14] डॉ0 अल्तेकर ने भोग एवं भाग उदंग एवं उपरिकर को एक ही प्रकार का कर स्वीकार किया है।[15] रोमानियोगी ने डॉ0 अल्तेकर के कथन का समर्थन किया है।[16] वी0पी0 मजूमदार ने इस पर असहमति व्यक्त करते हुए अपने मत की पुष्टि में कुछ अभिलेखों का उल्लेख किया है, जिसमें उपरिकर एवं भोग का उल्लेख एक साथ हुआ है। धर्मपाल के नालन्दा लेख, नारायण पाल के भागलपुर लेख, अमोध वर्ष के मान्धाता लेख में इन दोनों करों का एक साथ उल्लेख हुआ है। जहाँ तक साहित्य एवं अभिलेखों में वर्णित भोग कर का सम्बन्ध है, वह राजा को समय–समय पर प्राप्त होता रहता था। उस कर का समय एंव मात्रा निश्चित नहीं थी। बी0पी0 मजूमदार द्वारा प्रस्तुत अभिलेख मुख्यतः बंगाल की आर्थिक नीति से सम्बन्धित हैं शेष भारत में भूमि कर को बलि, भाग, उद्रंग, अपरिकर आदि नामों से अभिहित किया जाता था। सारांशतः भूमि कर भूमि की उर्वरता, श्रम, लागत को ध्यान में रखकर राजा 1/4,1/6 एवं 1/8 भाग प्राप्त करने का अधिकारी था।

राजा द्वारा करों में वृद्धि की सूचना भी प्राप्त होती है। कश्मीर के शासक शंकर वर्मा (883–902ई0) ने कर में वृद्धि की थी। दक्षिण भारत के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजा प्रथम चोल के समय बढ़ाये गये कर की अदायगी न करने पर एक स्त्री को शासन द्वारा कठोर दण्ड दिया गया। उसने इस अत्याचार से ऊबकर आत्महत्या कर ली।[17] कुलोत्तुंग के शासन काल में बढ़े हुए करों को न देने का उदाहरण प्राप्त होता है। वहाँ के लोगों ने यह तय किया था कि कूप सिंचित क्षेत्रों में उपज का 1/3 भाग एवं इतर क्षेत्रों में 1/3 भाग से अधिक कर नहीं प्रदान करेंगे। हमें कर की अदायगी इस लिए करनी पड़ती है क्योंकि हम लोग सम्मिलित रूप में विरोध नहीं करते है। अब हम लोगों ने निश्चय किया है हममें से कोई अन्यायी कर नहीं देगा।[18] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य युग में प्रजा पारम्परिक करों के अलावां अतिरिक्त कर न देने के लिए संगठनबद्ध हो रही थी। वीर राजेन्द्र ने वेंगी के चालुक्यों के विरूद्ध युद्ध का साधन जुटाने के लिए प्रति वेलि भूमि पर कलंजू स्वर्ण का विशेष कर लगाया था।[19] गाहड़वाल शासन में लगने वाला तुरूष्क दण्ड भी मुसलमान आक्रमण के सन्दर्भ में लगाया गया अतिरिक्त कर था।[20] कुलोत्तुंग तृतीय के शासन काल में उसके एक सामंत ने ग्राम सभा की उपेक्षा करके ऊसर भूमि पर कर लगा दिया था। उक्त कर को न देने पर ग्रामसभा के सदस्यों को बन्दीगृह में रखा गया। उन्हें बन्दीगृह से मुक्ति ग्रामसभा की जमीन बेंचकर कर की अदायगी करने पर ही हुई।[21]

भूमि कर अधिकांशतः वस्तु के रूप में लिया जाता था। विवेच्य काल में नकद को वरीयता दी जाती थी। पूर्व मध्यकाल में बढ़ते हुए संघर्षों एवं तुर्क आक्रमण ने सैन्य व्यय को बढ़ा दिया था। मध्य एशिया से आयात होने वाले अश्वों पर व्यय भार बढ़ गया। नकद कर के सन्दर्भ में चीतल दुर्ग जिले से खोटिंग के काल का अभिलेख[22] तथा गोविन्द चतुर्थ का कैम्बे दान पत्र[23] विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। राष्ट्रकूट शासन में कराधान कठोर था, जो उपज का 20 प्रतिशत था।[24]

समय

राजस्व अधिकारियों द्वारा कर की उगाही किश्तों में की जाती थी। यह किश्त फसलों के तैयार होने पर आधारित थी। 888ई0 के बेगुम्रा[25] लेख में कर की तीन किश्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। (1) भाद्रपद, (2) कार्मिक (3) माघ।

मनुस्मृति के टीकारण कुल्लूक भट्ट ने वर्ष में दो बार भाद्रपद एवं पौष माह में कर लेने का उल्लेख किया है।[26] अर्थ शास्त्र के टीकाकार भट्ट स्वामी ने भाद्रपद एवं चैत्र मास में कर लेने का उल्लेख किया है। भट्ट स्वामी का कथन विश्वसनीय लगता है, क्योंकि भाद्रपद एवं चैत्र दोनों महीनों में फसलें पककर तैयार हो जाती थी इसीलिए उक्त दोनों माह कर अदायगी के लिए उपयुक्त थे।

अन्य कर

भूमि कर के अतिरिक्त राजा वाणिज्य एवं व्यापार पर कर लगाकर कोष की वृद्धि करता था। व्यापारियों को ग्राम एवं नगर में बिक्री हेतु लाने वाली वस्तुओं पर कर देना पड़ता था। विभिन्न प्रकार के करों की जानकारी भी राज्य शास्त्र के ग्रन्थों एवं दान पत्रों से प्राप्त होती है। गोविन्द तृतीय के पैठन दानपत्र से हमें उद्रंग, उपरिकर, सदशापराध, भूतपाट प्रव्यय, सोपाद्यमान विष्टिक, धान्य हिरण्यादेय, चाटभट प्रावेश्य, आभ्यंतर, सिटि, भूमिद्विन्द्र न्याय आदि करों का उल्लेख प्राप्त होता है।[28]

993 ई0 के शिलाहार शासक अपराजित के ताम्रलेख में अर्द्धभाग, भोग कर समन्वित सवृक्षमालाकुल, स्व सीमा पर्यन्त, सकाष्ठ तृपादिक, सदण्ड दशापराध, देवदेय ब्रह्मदेय, सर्वोत्पत्ति युक्त तथा गाहड़वाल लेखों से सजल स्थल सलोहलवणा आकर, सपर्ण आकार सगर्तोषां (बंजर भूमि) समधूक, चूतवन वाटिका विटप तृण धूति गोचर पर्यन्तः जैसे करों का उल्लेख प्राप्त होता है। गाहड़वाल लेखों से ही प्रवणिकर (व्यापारियों पर लगने वाले कर) कूटक, तुरूष्क दण्ड (मुसलमानों से देश की रक्षा के लिए लिया जाने वाला कर) कुमार गद्रूयाणक (राज कुमार की जन्मतिथि पर लिया जाने वाला कर) हिरण्य[29] (पुष्पा नियोगी के अनुसार आयकर, डॉ0 वेनी प्रसाद[30] के अनुसार खानों पर लगाया जाने वाला कर तथा डॉ0 घोषाल[31] के अनुसार विशिष्ट फसलों पर लिया जाने वाला कर था।) जलकर, गोकरनिधि (पृथ्वी के अन्दर छिपे खजानों पर लगने वाला कर) निक्षेप जैसे करों का उल्लेख प्राप्त होता है। बंगाल से प्राप्त अभिलेखों[32] से ज्ञात होता है कि राज्य के व्यापारियों, कृषकों एवं अन्य शिल्पकार्मियों को भी अपनी आय का एक भाग राजकोष में जमा करना होता था। अभिलेखों के आधार पर मुख्य रूप से लिए जाने वाले करों का विवरण निम्नवत् हैः–

1. उद्रंग– निश्चित कर जो स्थानीय कास्तकारों को देना पड़ता था।
2. उपरिकर– वे कर जो अस्थायी कृषकों द्वारा राजा को प्राप्त होते थे।
3. सदज्ञापराध– दस अपराधो से सम्बन्धित दण्ड शुल्क।
4. भूतपाट प्रव्यय– आकस्मिक निधि अथवा गड़ा हुआ धन।
5. सोपाद्यमान विष्टिक– बेगारी अर्थात् जो लोग कर देने में असमर्थ होते थे, उन्हें उसके बदले में राज्य का कुछ कार्य करना पड़ता था।
6. धान्य हिरण्यादेय– वह धनराशि जो अनाज एवं स्वर्ण दोनों रूप में प्राप्त होती थी।
7. चाट भट प्रावेश्य – राजकीय पुलिस एवं सैनिकों के प्रवेश पर सम्बन्धित ग्राम को कर देना पड़ता था।
8. आभ्यंतर सिद्धि– सम्पूर्ण राजस्व।
9. भूमि छिद्र न्याय – नये कृषकों को राज्य द्वारा प्रदान की गयी भूमि की पहली बार जोतने पर दिया जाने वाला कर।

दान पत्रों से हमें चरागाहों पर भी कर लगाये जाने की सूचना प्राप्त होती है। कलचुरि लेखों से हमें इस कर का विवरण प्राप्त होता है। गाहड़वाल लेखों से इसकी पुष्टि होती है। चरागाहों पर चरने वाले पशुओं के मालिक को गाय एवं भैंस पर दो द्रम्म, बैल पर एक द्रम्म तथा भेड़ एवं बकरियों पर 1/2 द्रम्म देना पड़ता था। ऐसे बैल जिनका उपयोग राजकीय कृषि के लिए होता था उन पर कोई कर नहीं लिया जाता था।[35] व्यापारियों को बाजार में वस्तुओं के बेचने पर शुल्क अदा करना पड़ता था। कलचुरि नरेश युवराज देव के एक लेख में विभिन्न प्रकार के व्यापारियों के करों का उल्लेख है।[36]

उक्त लेख में निम्नलिखित करों का उल्लेख प्राप्त होता है।

1. पत्तन माण्डपिका – बाजार लगने वाले स्थान पर बिक्री हेतु आने वाली वस्तुओं पर लगने वाले शुल्क को शुल्क माण्डपिका कहा जाता था।
2. एक षण्डिका नमक – (स्थानीय क्षेत्र की एक मात्रा) के लिए एक षीडषिका जो द्रम्म का 1/16 भाग होता था शुल्क देना होता था।

इसी प्रकार तेल, पूगफल, मिर्च, सोंठ, वर्तन, शिल्पकर्म, घी, हस्ति, अश्व पर भी कर देना होता था।

चाहमान अभिलेखों में एक कूटक नमक के लिए एक विशोपक कर देना पड़ता था। तेल पेरने वाली मशीनों के व्यापारियों को एक षोडषिक प्रतिमाह तथा एक पौर दो युगों के लिए देना पड़ता था। विलहरी अभिलेख की पंक्ति 80 में एक भरक पान, कड़े विछके का फल, मिर्च, सोठ एवं अन्य वस्तुओं के लिए एक पौर कर देना पड़ता था। प्रत्येक वीथि के लिए एक कपर्द तथा सब्जी एंव अण्डे के लिए द्यूत कर देना पड़ता था। उक्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि कलचुरि प्रशासन में पौर एवं कपर्द छोटे–छोटे सिक्के होते थे। भरक एक मात्रा थी जिसका उल्लेख[38] चामुण्ड राय के अर्थुणा अभिलेख एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में भार के अर्थ में उल्लेख हुआ है।[39] जुआ खेलने पर भी एक निश्चित अंश राज्य को देना होता था जिसे द्यूत कपर्द के नाम से जाना जाता था।

विलहरी प्रस्तर अभिलेख की पंक्ति 81 में विभिन्न प्रकार के द्रव्यों पर, घास के ढ़ेरों पर धीरपार (संभवत्ः मछलियों) पर कर देना होता था। बाजार में एक हाथी बिकने पर चार पौर, एक अश्व बिकने पर दो पौर शुल्क

देना होता था।[40] मथनदेव के राजौर अभिलेख[41] में कुछ करों का उल्लेख हुआ है।

1. कृषि उत्पादित वस्तुओं को बाजार में बेचने पर 3 विंशोषक कर देना पड़ता था।
2. प्रति घटक कूपक तेल और घी के लिए दो पालिका देना पड़ता था।
3. नगर के बाहर से आने वाले 50 पत्तों पर प्रति छोलिका देना पड़ता था।

इसी प्रकार विक्रम सम्वत् 1010 के मेवाड़ से प्राप्त होने वाले एक अभिलेख[42] में हाथी बेचने पर एक द्रम्म, सींग वाले जानवरों को बेचने पर 1/40 द्रम्म, अश्व पर दो रूपक, एक तुला लाट पर एवं पुष्प विक्रेताओं को प्रतिदिन एक चतुशर देना पड़ता था। चतुःशर का समीकरण सम्भव नहीं हुआ है। पहेवा अभिलेख[43] से ज्ञात होता है कि बाजार में बिके हुए अश्वों पर एक द्रम्म प्रति अश्व देना होता था। हर्ष के प्रस्तर अभिलेख में इसका उल्लेख हुआ है। इस प्रकार विवेच्य काल में शुल्क (चुंगी) द्वारा देय (बाजार में प्रवेश कर) तथा मण्य संस्था (बाजार की समिति द्वारा वसूल किया जाने वाला कर) और वर्तानि (सम्भवतः सड़क पर यात्रा करने वालो व्यापारिक काफिले से लिया जाने वाला कर) जैसे करों से राज कोष को आय होती थी। राष्ट्रकूट अभिलेखों से गृहकर की सूचना मिलती है। हेवले अभिलेख (875 ई0) में मन्दिर के लिए दिये गये 12 घरों का उल्लेख है, जो पूर्णतया कर युक्त थे। इससे स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट प्रशासन में गृहकर भी लिया जाता था। इन करों के अतिरिक्त अपराधियों से प्राप्त अर्थदण्ड से भी राज्य को आय होती थी। विवेच्य युग में कारावास का दण्ड प्रचलित था लेकिन अधिकांश राजनीति परक ग्रन्थ अर्थदण्ड का विधान प्रस्तुत करते है। मनु[44] याज्ञवल्क्य[45] एवं विष्णु का कथन है कि ब्राह्मण को छोड़कर यदि अन्य वर्ग के लोग निःसंतान मरते थे तो उसकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था। दशवीं शताब्दी के विचारक सोमदेव[47] ने कोष की वृद्धि के लिए कुछ अधोलिखित उपाय सुझाये है। यथा–

1. राजा को चाहिए कि वह देवता, ब्राह्मण एवं वणिकजनों का ऐसा धन ग्रहण कर ले जो क्रमशः धर्मानुष्ठान एवं कुटुम्ब संरक्षण में उपयोगी न हो।
2. धनाढ्य पुरूष, विधवा, धर्माधिकारी, ग्राम में लेन–देन करने वाले महाजन, वेश्या समूह एवं पाखण्डियों का धन अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिए।
3. राजा को चाहिए कि वह सम्पत्तिवान मंत्री, पुरोहित एवं सामंत के घर जाकर उनसे धन प्राप्त करके अपने कोष की वृद्धि करें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण मध्यकालीन भारत में कराधान कठोर था। सामंती अर्थव्यवस्था एवं तुर्क आक्रमण के परिणामस्वरूप प्रजा को अनेक नये करों का अधिभार झेलना पड़ा। वैसे विजिगीषु शासन परम्परागत करों को लागू करने का हर सम्भव प्रयास करते थे, किन्तु बढ़ते हुए सैन्य व्ययों ने उसे अतिरिक्त कर लगाने के लिए विवश कर दिया।

निष्कर्ष

उच्च तथ्यों के सम्यक आलोक में स्पष्ट हो जाता हैं कि राजकोष को संवद्धित करने हेतु राज्य द्वारा आलोच्य काल में अनेक करों के लगाए जाने के पीछे राज्य को सबल करना था जिससे बाहय आक्रमण से देश की रक्षा प्रजापालन तथा आंतरिक शांति व सुव्यवस्था बनायी जा सके। यधपि अनेक लोकप्रिय व अनावश्यक करो को भी आरोपित किया गया था किन्तु मुख्य कर कृषि तथा भूमि कर था जिससे राजकीय कार्य संपादित होते थे।

पाद टिप्पणी

1. *नीतिवाक्यामृत, त्रयी समु, 23–25, पृ0–58*
2. *पराशर स्मृति, 2.17–18*
   राजेदत्वा तु षड्भागं देवानांचैकविशकम्।
   विप्रानां त्रिशकं भाग सर्व पापैः प्रमुच्यते।
3. *वही, 1, 68, 13*
4. *मनुस्मृति 6, 127, पृ. 131 पर मेधातिथि का भाष्य*
5. *अग्निपुराण, 239, 44–45*
6. *नीतिवाक्यामृत, वार्ता समु 21–22, पृ.66*
7. *वही, वार्ता 7.130–132*
8. *.मनुस्मृति 7.130–132*
9. *अर्थशास्त्र, कौटिल्य, 5.2*
10. *मनुस्मृति, 8.130*
11. *सरकार, डी0सी0 : लैण्डलार्डिज्म एण्ड टिनेसी इन एशिएंट इण्डिया ऐज रिवील्ड बाई एपिग्राफिकल रिकार्ड्स, लखनऊ, 1969, पृ0–6*
12. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 18, अभिलेख सं0–13, पृ0–113*
13. *सरकार डी0सी0 : पूर्वोक्त, पृ0–6*
14. *वही पृ0–15*
15. *अल्तेकर, ए0एस0, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0–214*
16. *नियोगी, रोमा, हिस्ट्री ऑफ गाहड़वाल डायनेस्टी, पृ0–168*
17. *साउथ इण्डियन एपिग्राफिस्ट रिपोर्ट, 1907, परिच्छेद 42, मद्रास सरकार*
18. *अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0–284*
19. *साउथ इण्डियन एपिग्राफिस्ट रिपोर्ट, 1907, सं0–520*
20. *एपिग्राफिया इण्डिया जिल्द 14, पृ0–1983*
21. *साउथ इण्डियन एपिग्राफिस्ट रिपोर्ट, 1912, सं0–102*
22. *अल्तेकर, ए0एस0, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0–223*
23. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 6, पृ0–36*
24. *अल्तेकर, ए0एस0, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0–223*
25. *इण्डियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द–13, पृ0–68*
26. *मनुस्मृति, 8.307 पर कुल्लूक भट्ट की टीका*
27. *अर्थ शास्त्र, 2.15 पर भट्ट स्वामी की टीका*
28. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 3, पृ0–109*
29. *नियोगी, पुष्पा : कांट्रीव्यूसन टू दि इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया पृ0–183*
30. *वेनी प्रसाद : स्टेट इन ऐंशियण्ट इण्डिया, पृ0–302*
31. *घोषाल, यू0एस0 : हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ0–62*
32. *मुकर्जी आर0आर0 :कार्पस ऑफ बंगाल इन्सक्रिप्सन्स*
33. *मिराशी, वासुदेव विष्णु : का0इ0इ0, कलचुरि एडमिनिस्ट्रेशन, जिल्द–4 भाग–1*
34. *नियोगी, रोमा, हि0आ0गा0, डायनेस्टी, पृ0–185*

35. *लैण्ड रेवेन्यू इन इण्डिया हिस्टारिकल स्टडीज, संपा, आर0एस0शर्मा, पृ0–26*
36. *मराशी, वासुदेव विष्णु : का0इ0इ0 जिल्द–4, भाग–1, पृ0–223*
37. *इण्डियन ऐंटीक्वेरी, पृ0–57*
38. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 14, पृ0–302*
39. *याज्ञवल्क्यूस्मृति, 2.221 पर मिताक्षरा टीका*
40. *मिराशी, वासुदेव विष्णु, का0इ0इ0, जिल्द–4, भाग–1, पृ0–223*
41. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 3, पृ0–263*
42. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 22, पृ0–92*
43. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 1, पृ0–184*
44. *मनुस्मृति, 8.35–39*
45. *याज्ञवल्क्य, 2.34–35*
46. *विष्णु स्मृति, 4.1*
47. *सोमदेव नीति, कोष समु., 14*